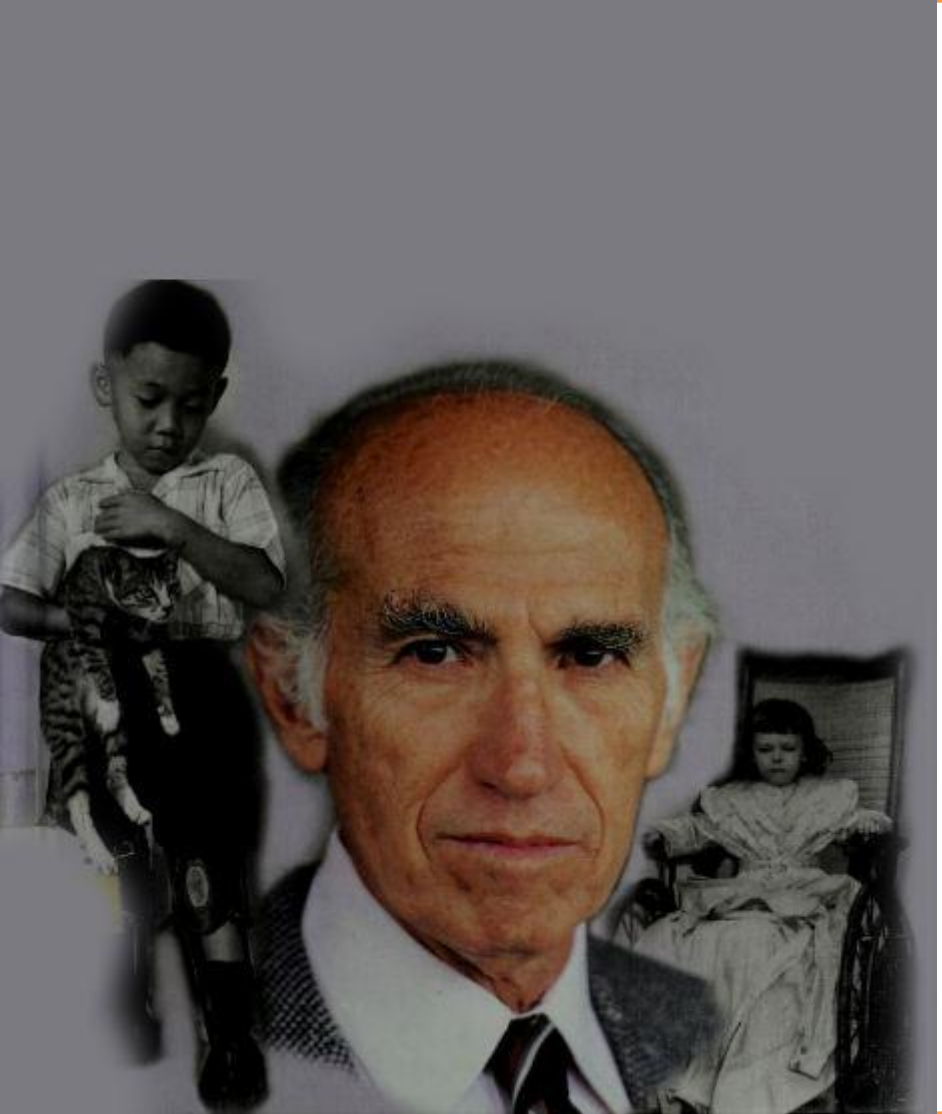

जोनास साल्क

पोलियो वैक्सीन के आविष्कारक

कोरीन और रोज, हिंदी : विदूषक

जोनास साल्क

पोलियो वैक्सीन के आविष्कारक

कोरीन और रोज, हिंदी : विदूषक

कल्पना करें एक ऐसे हत्यारे की जिसे आप देख न सकें. उसे छू न सकें, न ही उसकी आवाज़ सुन पाएं. पर हत्यारा मौजूद है, यह आपको पक्का पता है. क्यों, घबराने वाली बात है न? 1940 और 50 के दशकों में बहुत से लोगों के दिमाग में इस तरह के डरावने सवाल कौंध रहे थे. उन्हें किस बात का डर था? उस हत्यारे का नाम था - *पोलियो* या *पोलियो-मायलाईटिस*. उसका उद्गम दो ग्रीक शब्दों *पोलियो* (यानि सिलेटी) और *मायलाईटिस* (मेरुदंड) से था. मतलब वो बीमारी जो रीढ़ की हड्डी की नर्व-टिश्यू में होती है. यह बीमारी चुपचाप पनपती है, अदृष्य होती है पर एकदम घातक भी.

पोलियो एक ऐसी बीमारी है जिससे हाथ, पैर और छाती तक की मांसपेशियों को लकवा मार जाता है. कभी पोलियो को "शिशु-लकवे" के नाम से जाना जाता था, क्योंकि बहुत से बच्चे उसके शिकार होते थे. इस बीमारी के शिकार बच्चे कभी चल नहीं पाते थे. उन्हें चलने के लिए (बैसाखी) या लेग-ब्रेस की ज़रुरत पड़ती थी. कुछ तो मशीनों के बिना सांस तक नहीं ले पाते थे. उनमें से एक मशीन का नाम था *"आयरन-लंग"* (लोहे का फेफड़ा). यह लम्बा, गोल स्टेनलेस स्टील का ड्रम मरीज़ को गले के नीचे घेरता था. जिस मरीज़ के फेफड़ों की मांसपेशियां काम नहीं करती थीं वे "आयरन-लंग" से सांस लेते थे.

पोलियो का आतंक पूरी दुनिया में फैला था. यह बीमारी कहाँ से आती है? यह बीमारी किसे होगी और उसे कैसे रोका जाए? उसके बारे में किसी को नहीं पता था. पर आज बहुत से ऐसे नौजवान होंगे जिन्होंने अपने जीवन में, इस बीमारी का नाम तक नहीं सुना होगा. क्यों? एक अमरीकी डॉक्टर जोनस साल्क के कारण. डॉक्टर साल्क ने उस वैक्सीन का इजाद किया जिससे दुनिया, पोलियो से मुक्त हुई और उस बीमारी का लोगों में डर कम हुआ. यह कहानी पोलियो की वैक्सीन के बारे में है.

1916 में न्यू-यॉर्क सिटी में काफी गर्मी पड़ रही थी. पर यह गर्मी कुछ अलग थी. अमरीका पोलियो की महामारी से ग्रस्त था. महामारी अक्सर गर्मियों में आती है. स्वास्थ्य अधिकारियों ने भीड़ को इस बीमारी का कारण समझा. सिनेमा-घरों और स्विमिंग-पूल्स में लोगों की भीड़ होती थी. इसलिए स्वास्थ्य अधिकारियों ने उन स्थानों को बंद कर दिया. उन्होंने पालकों को बच्चों को बाहर के सभी लोगों से दूर रखने की सलाह दी.

जब लोगों के फेफड़ों की मांसपेशियां काम नहीं करती थीं तब "आयरन-लंग" मशीन लोगों की सांस लेने में मदद करती थी.

बहुत से न्यू-यॉर्क सिटी निवासियों की तरह डेनियल और डोरा सॉल्क भी इससे परेशान थे. उनके बेटे जोनस का जन्म 28 अक्टूबर 1914 को हुआ था. वो अभी दो साल का था. यह भयानक बीमारी क्या है? उन्होंने पूछा.

पोलियो की बीमारी एक सूक्ष्मजीवी (वायरस) द्वारा होती है. वायरस से कई प्रकार की बीमारियाँ होती हैं जैसे - मीज़िल्स और साधारण जुखाम. पर इनमें पोलियो-वायरस सबसे खतरनाक होता है क्योंकि वो मेरुदंड की नर्वज़ यानि तंत्रिकाओं को प्रभावित करता है.

मानव शरीर की तंत्रिकाएं मस्तिष्क के सिग्नल को मेरुदंड से होकर शरीर के अन्य भागों में पहुंचाती हैं और वहां की मांसपेशियों को कार्य करने का आदेश देती हैं. उदाहरण के लिए मस्तिष्क तंत्रिकाओं द्वारा आपके हाथ को एक सन्देश जाता है. सन्देश है – अपना हाथ हिलाओ. तब आप अपना हाथ हिलाते हैं. पर पोलियो-वायरस इन तंत्रिकाओं पर आक्रमण करता है. फिर जब आपका मस्तिष्क कहता है - अपना हाथ हिलाओ, तब आपकी तंत्रिकाएं मांसपेशियों को यह सन्देश नहीं भेज पाती हैं. इसलिए आप हाथ नहीं हिला पाते हैं.

1916 की महामारी में युवा जोनस को पोलियो नहीं हुआ. तभी उसके परिवार का तबादला मेनहट्टन से ब्रोंक्स में हुआ जो न्यू-यॉर्क सिटी के सबसे उत्तरी भाग में स्थित था. वो वहीं के एक स्कूल में पढ़ा. जोनस पढ़ाई में बहुत होशियार था. जब हाई-स्कूल में दाखिले का समय आया तो न केवल वो होशियार था, पर उसकी किस्मत भी अच्छी थी. तब सिटी कॉलेज ऑफ़ न्यू-यॉर्क - जो आज सिटी यूनिवर्सिटी ऑफ़ न्यू-यॉर्क (CUNY) के नाम से जाना जाता है, कुछ विशेष स्कूल स्थापित कर रहा था. उन स्कूलों में केवल प्रतिभावान बच्चे ही लिए जाते थे जो चार की बजाए तीन साल में ही हाई-स्कूल ख़त्म कर सकें.

महामारी के कारण स्विमिंग पूल और सिनेमाघर बंद कर दिए गए.

पोलियो-वायरस से बहुत से युवा लोगों को लकवा हुआ. उन्होंने अपना पूरा बचपन व्हील-चेयर्स में बिताया. उनमें से कुछ स्थाई तौर पर पूरी ज़िन्दगी के लिए अपाहिज बने.

बारह साल के जोनस साल्क ने वो कठिन परीक्षा पास की और फिर वो 1926 में वो टाउनसेंड हैरिस हाई-स्कूल में पढ़ने गया. तीन साल बाद उसने वहां से हाई-स्कूल पास किया. अभी जोनस पंद्रह साल का भी नहीं था पर वो कॉलेज में जाने को तैयार था. पर उसकी पढ़ाई का खर्चा कौन उठाएगा? अब तक साल्क परिवार में दो और बेटे हुए और उनके लिए खर्चा उठाना मुश्किल था. CUNY ने कुछ होनहार बच्चों का खर्चा उठाने की ठानी. जोनस साल्क उनमें से एक था.

1929 में उसने कॉलेज में दाखिला लिया. वो वहां क़ानून की पढ़ाई करना चाहता था. पर 1934 में पढ़ाई समाप्त करने तक उसने अपना मन बदला. वो अब एक डॉक्टर बनना चाहता था. इससे उसके माता-पिता भी उसके निर्णय से काफी खुश हुए. उन्हें लगा एक दिन उनका बेटा शहर में अपना क्लिनिक खोलेगा.

पर अंत में ऐसा नहीं हुआ. पहले जोनस साल्क ने, न्यू-यॉर्क यूनिवर्सिटी के कॉलेज ऑफ़ मेडिसिन में पढ़ाई की. मेडिकल कॉलेज के पहले साल के बाद जोनस साल्क ने एक वर्ष एक प्रयोगशाला में काम किया. उसके बाद ही उसने दुबारा मेडिकल की पढ़ाई शुरू की. 8 जून 1939 को उसे स्नातक की डिग्री मिली, और फिर अगले ही दिन उसने डोना लिंडसे से शादी की. वो डोना से 1937 में मिला था.

स्नातक की डिग्री के तुरंत बाद जोनस साल्क ने कुछ महीने डॉ. थॉमस फ्रांसिस की प्रयोगशाला में काम किया. वे न्यू-यॉर्क यूनिवर्सिटी मेडिकल स्कूल में प्रोफेसर थे. डॉ. थॉमस फ्रांसिस, माइक्रोबायोलॉजी के क्षेत्र में काफी प्रसिद्ध थे.

माइक्रोबायोलॉजी में सूक्ष्मजीवीयों – बैक्टीरिया और वायरस का अध्धयन किया जाता है. डॉ. फ्रांसिस एक ऐसी वैक्सीन पर काम कर रहे थे जो वायरस को मार दे.

मान लो एक चूहे को वायरस हो गया है और वो इन्फ्लुएंजा या फ्लू से पीड़ित है. फ्लू के कारण अब चूहे के शरीर में जीवित इन्फ्लुएंजा का वायरस होगा. फ्रांसिस ने सोचा कि वो प्रयोगशाला में जीवित फ्लू के वायरस को चूहे के फेफड़े से बाहर निकालेंगे. फिर वो उस वायरस को एक विशेष किरण से मार देंगे. फिर वो उस मृत वायरस से एक वैक्सीन बनायेंगे. अगर वो वैक्सीन किसी व्यक्ति के शरीर में इंजेक्ट की जाएगी तो शायद उस व्यक्ति को फ्लू नहीं होगा. क्यों? इसका उत्तर है एंटी-बॉडीज.

मान लो तुम्हारे शरीर में मृत वायरस का वैक्सीन इंजेक्ट किया जाता है. उस मृत वायरस की वजह से तुम्हारा शरीर एंटी-बॉडीज नाम के प्रोटीन्स पैदा करेगा. मान लो उसके बाद तुम्हारे शरीर में फ्लू का वायरस प्रवेश करता है. तब तुम्हारा शरीर, फ्लू के वायरस को तुरंत पहचान जाएगा – और कहेगा कि फ्लू के वायरस को तुम्हारे शरीर में नहीं होना चाहिए. तब एंटी-बॉडीज तुरंत उससे जाकर लड़ेंगी और उसे ख़त्म करेंगी. तब तुम्हें फ्लू नहीं होगा.

यह शायद सुनने में आसान लगे, पर वैक्सीन द्वारा किसी वायरस से लड़ना एक बहुत जटिल और कठिन काम होता है. एंटी-बॉडीज, शरीर में घुसने वाले आक्रमणकारी जर्म्स या कीटाणुओं (जो तुम्हें बीमार करते हैं) से लड़ती हैं.

बाहरी आक्रमणकारी जर्म्स से लड़ने वाली शरीर की फ़ौज को इम्यून सिस्टम कहते हैं. अच्छा इम्यून सिस्टम बहुत सारे जर्म्स से लड़कर उन्हें बाहर रख सकता है. आपके इम्यून सिस्टम की एक याददाश्त भी होती है. मिसाल के लिए वो याद रखता है कि क्या आपने फ्लू की वैक्सीन ली है. तब अगर आपको फ्लू होता है तो फिर आपके शरीर की एंटी-बॉडीज तुरंत उससे जाकर लड़ेंगी.

1940 में जोनस साल्क ने दो साल के लिए प्रयोगशाला छोड़ दी और इंटर्न बना. किसी इंटर्न को अस्पताल में, अनुभवी डॉक्टर्स के साथ काम करने का अवसर मिलता है. तब इंटर्न अस्पताल के तौर-तरीके और बीमारियों का इलाज करना सीखते हैं. अमरीका का सबसे अच्छा अस्पताल था *माउंट सिनाई हॉस्पिटल* जो न्यू-यॉर्क सिटी में स्थित था. उस साल 250 लोगों ने वहां इंटर्नशिप के लिए अर्जी दी, पर उनमें से सिर्फ 12 को ही चुना गया. डॉ. जोनस साल्क उनमें से एक थे.

1942 में इंटर्नशिप ख़त्म हुई और साल्क कोई नौकरी तलाशने लगे. उन्होंने अपने पुराने टीचर डॉ. फ्रांसिस को एक पत्र लिखा. अब वो यूनिवर्सिटी ऑफ़ मिशिगिन, ऐन आर्बर में पढ़ा रहे थे. क्या डॉ. फ्रांसिस के पास साल्क के लिए कोई नौकरी थी?

उस बीच अमरीकी सरकार से डॉ. साल्क को एक नौकरी का निमंत्रण मिला. 1941 से अमरीकी सरकार दूसरे महायुद्ध की लड़ाई में शामिल थी. डॉ. साल्क को सरकार से निमंत्रण मिला कि वो या तो अमरीकी फ़ौज में भर्ती हो सकते थे या फिर फिर राष्ट्रीय सुरक्षा के किसी अन्य महत्वपूर्ण पक्ष पर शोध कर सकते थे.

माउंट सिनाई हॉस्पिटल, न्यू-यॉर्क सिटी

साल्क ने डॉ. फ्रांसिस की *स्कूल ऑफ़ पब्लिक हेल्थ* की प्रयोगशाला में काम करना शुरू किया. डॉ. फ्रांसिस, फ्लू की वैक्सीन पर काम कर रहे थे. अमरीकी फ़ौज को उस वैक्सीन की तुरंत ज़रुरत थी. इसलिए फ्रांसिस और साल्क जल्द-से-जल्द फ्लू की वैक्सीन बनाना चाहते थे. और उन्होंने यह किया भी. साल्क ने प्रयोगशाला में खोज निकाला कि फ्लू के वायरस को फोर्मलिन के घोल से नष्ट किया जा सकता था. फिर मृत वायरस से बनी इस वैक्सीन को किसी के शरीर में इंजेक्ट करने पर वो वहां पर एंटी-बॉडीज निर्माण करती और पोलियो के मर्ज़ से लड़ती.

1943 की सर्दियों में फ्रांसिस और साल्क ने अपनी लेबोरेटरी में फ्लू की वैक्सीन विकसित की. पर क्या वो लोगों पर असरदार साबित होगी? लेबोरेटरी में किए प्रयोगों की असलियत को सिद्ध करने के लिए उनका "फ़ील्ड" परीक्षण ज़रूरी था. एक डबल-ब्लाइंड टेस्ट में इस वैक्सीन का दो हज़ार सैनिकों पर परीक्षण किया गया. इनमें से एक हज़ार सैनिकों को वैक्सीन दी गई और बाकी एक हज़ार में एक हानिरहित तरल "प्लेसिबो" इंजेक्ट किया गया, जिसमें कोई वैक्सीन नहीं थी. किसे क्या इंजेक्ट किया गया, यह किसी भी सैनिक को नहीं पता था. नतीजों से यह पता चला कि जिन सैनिकों को वैक्सीन दी गई थी उनमें से 75 प्रतिशत को फ्लू नहीं हुआ. यानि वैक्सीन काम कर रही थी!

1945 में दूसरा महायुद्ध समाप्त हुआ. वैसे मिशिगिन में अपने काम से साल्क खुश थे पर वे बहुत बेचैन भी थे. डॉ. जोनस साल्क बहुत होशियार थे पर उनके साथ काम करना काफी कठिन भी था. वो बहुत महत्वाकांक्षी थे और वो हमेशा अपनी बात को सही मानते थे.

साल्क के कई सहयोगी उनको बहुत महत्वाकांक्षी और आत्मविश्वासी मानते थे. साल्क पर इस प्रकार के आरोप सारी ज़िन्दगी भर लगते रहे. पर साल्क ने उनकी कोई ख़ास परवाह नहीं की. उन्होंने एक बार कहा, "ज़िन्दगी, लोकप्रियता की स्पर्धा नहीं है. यह सबक मैंने बहुत पहले सीख लिया था. मैं किसी इलेक्शन में खड़ा नहीं हो रहा हूँ. मैंने वो काम किए हैं जो मुझे बहुत ज़रूरी लगे."

तेंतिस साल की उम्र में साल्क को लगा कि उनकी खुद की प्रयोगशाला होनी चाहिए जिससे वो अपनी मर्ज़ी में मुताबिक वहां शोध-कार्य कर सकें. पर अब साल्क को अपने परिवार के बारे में भी सोचना था. तब उनके दो बेटे थे – पीटर और डैरिल. बाद में उनके तीसरा बेटा जोनाथन भी हुआ.

साल्क ने शरीर के इम्यून सिस्टम का गहराई से अध्धयन करने की सोची. वायरस के संपर्क में आने के बाद - क्यों कुछ लोग बीमार पड़ते हैं, और कुछ लोग नहीं? शायद इसका उत्तर शरीर की बीमारी से लड़ने की क्षमता यानि उसके इम्यून सिस्टम पर निर्भर करता होगा. इम्मुनोलोजी, शरीर की उस सुरक्षा प्रणाली का अध्धयन है. उसी क्षेत्र में जोनास साल्क अपना शोध कार्य करना चाहते थे.

बहुत से वैज्ञानिकों ने सूक्ष्मजीवियों पर शोध कर हमारे ज्ञान में इजाफा किया था. सूक्ष्मजीवी बहुत छोटे होते हैं और आँख से दिखाई नहीं देते हैं. हॉलैंड देश के निवासी अंटोनी वैन लेयूवेन्होएक ने सबसे पहला सूक्ष्मदर्शी (माइक्रोस्कोप) बनाया. 1670 में बनाये अपने माइक्रोस्कोप से वो पानी की बूँद में छोटे बैक्टीरिया को देख पाए थे.

एक इंग्लिश वैज्ञानिक एडवर्ड जेनर ने 1790 में एक घातक बीमारी चेचक "स्माल-पॉक्स" की वैक्सीन इजाद की थी. 1840 में, हंगरी के डॉक्टर इग्नाज़ फिल्लिप सेम्मेल्वेईस ने एक नया विचार रखा. प्रसूति गृहों में मृत्यु दर कम करने के लिए उन्होंने डॉक्टर्स और नर्सों से साबुन से हाथ धोने को कहा. किसी को यह पता नहीं था कि साबुन से हाथ धोने से एक-व्यक्ति से दूसरे तक कीटाणुओं का फैलना कम होगा. अस्पताल के ज़्यादातर लोगों ने सेम्मेल्वेईस को पागल करार दिया. पर जब उन्होंने हाथ धोए तो उससे मृत्यु दर वाकई में कम हुई.

डॉ. जोनाह साल्क, पत्नी डोना, बेटे जोनाथन, डैरील और पीटर (बाएं से दाएं)

उसके बाद भी शोध ज़ारी रहा और वैज्ञानिकों ने बैक्टीरिया में बारे में बहुत जानकारी हासिल की. बैक्टीरिया को सामान्य माइक्रोस्कोप से देखा जा सकता है. पर कुछ ऐसी बीमारियाँ थीं जिनमें उन्हें कोई भी बैक्टीरिया दिखाई नहीं दिया. वैज्ञानिकों को कोई अदृष्य चीज़ - जो दिखाई नहीं देती थी उन बीमारियों का कारण लगी. 1898 में किसी ने उस अदृष्य चीज़ को एक नाम दिया. हॉलैंड के वैज्ञानिक मार्टिनस बेईजेर्निक तब तम्बाकू के पौधों में लगी बीमारियों का अध्धयन कर रहे थे. वो जर्म्स (कीटाणुओं) की खोज में थे. लेकिन उन्हें वे दिखाई नहीं दिए. पर उनमें जर्म्स हैं यह उन्हें पक्का पता था. इसलिए उन्होंने उन्हें एक घृणित नाम दिया - "ज़हरीली कीचड़". उसका लैटिन अनुवाद था "वायरस".

पहले वायरस को नाम देने में सैकड़ों साल लगे. उसे देखने में तीस साल और लगे. तब एक नए प्रकार के माइक्रोस्कोप का इजाद हुआ. तब पहली बार वायरस को देखा जा सका. वे छोटे-छोटे सूक्ष्मजीवी थे. जब उन्हें माइक्रोस्कोप के नीचे दस हज़ार गुना बड़ा किया जाता था वे टेनिस की गेंदों जैसे दिखते थे.

फिर अपने शोधकार्य को ध्यान में रखकर जोनास साल्क मिशिगिन छोड़कर पेनसिलवेनिया में *यूनिवर्सिटी ऑफ़ पिट्टसबर्ग* चले गए. वहां वो फ्लू पर अपना काम ज़ारी रखने वाले थे. तभी उन्हें *नेशनल फाउंडेशन फॉर इन्फेंटाइल पैरालिसिस* से, एक विशेष शोधकार्य में भाग लेने का निमंत्रण मिला.

1938 से यह फाउंडेशन, पोलियो के मरीजों के उपचार और उनके पुनर्वास कार्य में लगी थी. जोनास साल्क और *नेशनल फाउंडेशन* ने बाद में मिलकर एक बहुत महत्वपूर्ण काम किया.

वैज्ञानिक, पोलियो की बीमारी से एक लम्बे अर्से से जूझते आ रहे थे. पर वैज्ञानिक उस लड़ाई में हार रहे थे. 1948 में देश, पोलियो की एक महामारी से गुज़रा. महामारी के ख़त्म होने तक 27 हज़ार लोगों को पोलियो हो चुका था. उनमें से कुछ की मृत्यु हो गई और कुछ आजीवन के लिए अपाहिज हो गए.

महामारी में अस्पताल पूरी तरह भर गए. पालकों ने अपने बच्चों को स्विमिंग पूल्स और सिनेमाघरों से दूर रखा. कोई भी इस बीमारी को देख नहीं सकता था और न ही उसे रोक सकता था. 1940 में पेंसिलिन और अन्य एंटीबायोटिक्स उपयोग में लाई जाती थीं. पर यह दवाइयां पोलियो में बेअसर थीं. एंटीबायोटिक्स से बैक्टीरिया मरते थे, वायरस नहीं.

जोनास साल्क के काम को *नेशनल फाउंडेशन फॉर इन्फेंटाइल पैरालिसिस* ने पूरा समर्थन दिया. 1940 में फाउंडेशन ने पोलियो शोध के लिए तमाम स्रोतों से धन जुटाया. प्रेसिडेंट फ्रेंक्लिन डेलानो रूज़वेल्ट ने इन प्रयासों को अपना पूरा समर्थन दिया.

पोलियो से हरेक डरता था. यहाँ पर छह बरस की दो जुड़वां बहनें जिन्हें पोलियो था और उनके पालक स्कूल के सामने विरोध प्रदर्शन कर रहे हैं क्यों कि स्कूल ने पोलियो ग्रस्त बच्चों को लेने से इंकार किया था.

महामारी के समय अमरीका के कई प्रसिद्ध लोग अस्पताल गए और वहां उन्होंने बच्चों का हौसला बढ़ाया. यहाँ पर बेब रुथ – स्टार बेसबॉल प्लेयर, पोलियो ग्रस्त बच्चों को आइसक्रीम भेंट कर रहे हैं.

प्रेसिडेंट फ्रेंक्लिन डेलानो रूज़वेल्ट न्यू-यॉर्क के अस्पताल में एक पोलियो मरीज़ से भेंट करते हुए.

प्रेसिडेंट रूज़वेल्ट ने लोगों से पोलियो पर शोध के लिए धन देने की अपील की.

प्रेसिडेंट फ्रेंक्लिन डेलानो रूज़वेल्ट (FDR) जब 39 वर्ष के थे तब उन्हें पोलियो हुआ था. बाद में उनका पोलियो का ज्वर तो ठीक हुआ पर उसके बाद वो बिना बैसाखी या लेग-ब्रेसिस के कभी खड़े नहीं हो पाए. 1932 में वे अमरीका के प्रेसिडेंट बने. बहुत लम्बे अर्से तक तमाम लोगों को यह तक नहीं पता था कि उनके प्रेसिडेंट शारीरिक रूप से अपाहिज थे.

अपने कार्यकाल के दौरान प्रेसिडेंट रूज़वेल्ट ने पोलियो रिसर्च के लिए बहुत मेहनत की. जब उन्हें पोलियो हुआ था तब उन्होंने काफी समय *वार्म स्प्रिंग रिसोर्ट* के गर्म पानी में बिताया था. बाद में प्रेसिडेंट ने उस स्थान को पोलियो का पुनर्वसन केंद्र बनवाया. पर उसके लिए उन्हें धन इकट्ठा करने में बहुत श्रम करना पड़ा.

उस ज़माने में लोग अपनी शारीरिक अपंगता को छिपाते थे. अब लोग इसके बारे में ज्यादा खुले हैं. आज लोग व्हील-चेयर पर बैठकर बास्केट-बाल खेलते हैं. अब हम जानते हैं कि व्हील-चेयर और बैसाखी लोगों के सपने पूरे करने में आड़े नहीं आती है.

प्रेसिडेंट रूज़वेल्ट को लगा कि वे प्रसिद्ध लोगों को शामिल कर वो पोलियो प्रोग्राम के लिए काफी धन जुटा पाएंगे. इसलिए उन्होंने एक लोकप्रिय कॉमेडियन एड्डी कोन्नेर से अपील की, कि वो धनी लोगों से संपर्क करके उनसे पोलियो कार्यक्रम के लिए पैसा इकट्ठा करे. पर केंटर ने यह करने से मना किया. उसके दिमाग में एक बेहतर आईडिया था. उसने एक राष्ट्रीय अभियान शुरू किया जिसमें हर कोई उसे अपना समर्थन दे सके! उसके बाद ट्रक भरकर सिक्के और डॉलर आने शुरू हुए. केंटर ने उन्हें "सिक्कों का जलूस" कहा. इस तरह वो 30 लाख डॉलर वाइट हाउस भेज पाया.

नेशनल फाउंडेशन फॉर इन्फेंटाइल पैरालिसिस ने 1967 में अपना नाम बदलकर *नेशनल फाउंडेशन – मार्च ऑफ़ डाईम्स* (सिक्के) रखा. 1979 में उन्होंने फिर अपना नाम बदला और अब वो *मार्च ऑफ़ डाईम्स बर्थ डिफेक्ट फाउंडेशन* कहलाती है. आज जब दुनिया से पोलियो जब लगभग लुप्त हो चुका है तब यह संस्थान, जन्म के समय के दोष और बच्चों के अच्छे स्वास्थ्य के लिए काम करती है.

1940 के आसपास *नेशनल फाउंडेशन* के रिसर्च के डायरेक्टर हैरी एम. वीवर ने साल्क को रिसर्च टीम में आमंत्रित किया. उन्हें अलग-अलग प्रकार के पोलियो के बारे में जानकारी हासिल करनी थी. यह ज़रूरी भी था. अगर अलग-अलग प्रकार के पोलियो वायरस थे तो शायद उनके लिए अलग-अलग प्रकार की वैक्सीन की ज़रुरत भी पड़ती.

फिर साल्क ने अपना वो शोध शुरू किया जिसने उन्हें बहुत शोहरत और प्रसिद्धि दिलाई. यह काम बहुत मुश्किल, महंगा और समय लेने वाला था. उस समय प्रयोगशालाओं में बंदरों पर प्रयोग किए जाते थे. और एक बन्दर पर केवल तीन अलग-अलग प्रकार के वायरस को ही टेस्ट किया जा सकता था.

फिर एक बड़ी खोज हुई, और वो साल्क की पिट्टसबर्ग की लेबोरेटरी में नहीं हुई. यह खोज 1948 में बोस्टन में हुई जहाँ डॉ. जॉन एंडर्स और उनके साथी चिकन-पॉक्स वायरस पर रिसर्च कर रहे थे. किसी प्रयोग में एक मानव भ्रूण की टिश्यू बची थी. उन्होंने उसे पोलियो-वायरस की परखनली में डाल दिया.

उन्हें तब बहुत आश्चर्य हुआ जब उस वायरस ने बढ़ना शुरू कर दिया. इससे पहले वैज्ञानिक मानते थे कि वायरस शरीर के बाहर नहीं बढ़ सकता था. पर क्योंकि अब उसे परखनलियों में बढ़ाना संभव था, इसलिए अब वो वायरस को शोध के लिए शरीर के बाहर उगा सकते थे. 1954 में एंडर्स और उसके साथियों को, इस शोध के लिए नोबल पुरुस्कार मिला.

साल्क को लगा कि एंडर्स के शोध से वो खुद अपने प्रोजेक्ट में अधिक तेज़ी ला सकते थे, और जल्दी पोलियो वैक्सीन का आविष्कार कर सकते थे. उस दशक के अंत तक साल्क के साथियों ने सौ से अधिक अमरीकी मरीजों के पोलियो सैंपल इकट्ठे किए थे. पोलियो-वायरस के वो नमूने तीन अलग-अलग प्रकार के निकले. इसलिए वैक्सीन को उन तीनों प्रकार के पोलियो-वायरस से मरीजों को सुरक्षित करना था. यह एक बहुत बड़ा काम था!

फिर अपनी लेबोरेटरी में उन्होंने बंदरों के लिवर टिश्यू का उपयोग कर तीनों प्रकार के पोलियो-वायरस उगाये. उन्होंने उन वायरसों को फॉर्मलडीहाईड से मार दिया. साल्क का मानना था कि जो मृत वायरस शरीर में नहीं बढ़ सकता था उससे वैक्सीन बनाई जा सकती थी. उन्हें डर था कि वैक्सीन में मौजूद जीवित वायरस, मर्ज़ को सुरक्षा प्रदान करने की बजाए कहीं उसे और बढ़ा नहीं दे. जब उन्होंने अपने मरे वैक्सीन का परीक्षण बंदरों पर करा तो उनमें से किसी को भी पोलियो नहीं हुआ.

डॉ. साल्क और डॉ. एंडर्स. डॉ. एंडर्स उन तीन पोलियो विशेषज्ञों में से थे जिन्हें 1954 में मेडिसिन का नोबल पुरुस्कार मिला.

डॉ. अल्बर्ट साबिन, यूनिवर्सिटी ऑफ़ सिनसिनाटी की अपनी प्रयोगशाला में.

वैज्ञानिक शोध की दुनिया दरअसल काफी छोटी होती है. इसलिए साल्क का शोध किसी के लिए कोई रहस्य नहीं था. पर साल्क का समर्थन करने की बजाए कई वैज्ञानिक साल्क पर बहुत गुस्सा थे. कई को उनका व्यक्तित्व पसंद नहीं था, लोग उन्हें बहुत घमंडी मानते थे. कुछ लोग उनकी प्रसिद्धी से जलते थे. उनके अनुसार साल्क उस समस्या पर पहले काम करने वाले अन्य लोगों को बिल्कुल श्रेय नहीं देते थे. साल्क के बारे में लोग हमेशा यह शिकायत करते रहे.

साल्क अपने क्षेत्र में काम करने वाले अन्य लोगों को नज़रंदाज़ करते थे. अपनी सफलता के बाद उन्होंने लोगों को "साल्क वैक्सीन" शब्द का उपयोग करने से भी मना किया.

कुछ वैज्ञानिक साल्क से इसलिए असहमत थे क्योंकि उनका मरे वायरस से बनी वैक्सीन में विश्वास नहीं था. उससे सबसे ज्यादा असहमत थे डॉ. अल्बर्ट ब्रूस साबिन – वो जिंदा वैक्सीन शिविर के हिमायती थे. यह पेशेवर ईर्ष्या से अधिक था. इन दो वैज्ञानिकों के बीच कुछ असली मूलभूत मतभेद थे. दोनों अपनी-अपनी थ्योरी को सही मानते थे.

इन दोनों मेडिकल कैम्पस के बीच की लड़ाई काफी घनघोर थी और वो लम्बे अरसे तक चलती रही. डॉ. साबिन अमरीका में 1921 में पोलैंड से आए थे और वे भी न्यू-यॉर्क यूनिवर्सिटी में पढ़े थे. उनका मानना था कि जिंदा पोलियो-वायरस वैक्सीन सबसे अधिक प्रभावशाली होगी.

जो लोग साल्क ने असहमति रखते थे उन्हें साल्क ने बिल्कुल नज़रंदाज़ किया. उनका विश्वास था कि वो सही पथ पर थे. 1952 तक उन्होंने लेबोरेटरी में तमाम प्रयोग किए थे और उनकी वैक्सीन बंदरों पर सफल रही थी. अब उसका परीक्षण लोगों पर करना था. नई दवा को लोगों पर टेस्ट करना हमेशा एक बहुत मुश्किल कार्य होता है.

साल्क ने जून 1952 में पहली बार लोगों पर अपनी वैक्सीन का परीक्षण किया. ऐसे 45 अपंग लड़के-लड़कियां थीं जो कभी पोलियो से पीड़ित थे, पर वेअब ठीक थे. इसमें से 27 बच्चे *डी. टी. वाटसन होम फॉर क्रिपलड चिल्ड्रेन*, पिट्टसबर्ग के थे. उनमें से कोई भी बच्चा कभी बीमार नहीं हुआ था. पर वो एक भयावह पल था. साल्क ने बाद में कहा, "जब आप बच्चों को पोलियो वैक्सीन देते हैं फिर दो-तीन हफ्ते आप इत्मीनान से सो नहीं पाते हैं."

बाद में परीक्षण में लिए साल्क ने खुद को और अपने परिवार को पोलियो की वैक्सीन दी. इसमें उनका 3 बरस का बेटा जोनाथन भी शामिल था. 1953 के शुरुआत तक कोई 500 लोग - जिसमें बच्चे और व्यस्क दोनों शामिल थे को यह वैक्सीन सुरक्षा के तौर पर दी गई और उनमें एंटीबाडीज विकसित हुईं.

इस सफलता के बाद *नेशनल फाउंडेशन* इसकी घोषणा करना चाहता था. पर साल्क सावधानी बरतना चाहते थे और अभी कुछ और परीक्षण करना चाहते थे. पर लोगों को परीक्षणों के नतीजे पता चल गए थे. एक अख़बार में "नई पोलियो वैक्सीन" के बारे में कहानी भी छपी थी. *जर्नल ऑफ़ द अमेरिकन मेडिकल एसोसिएशन* ने भी मार्च में इस सफलता को छापा था.

साल्क परेशान थे. उन्हें लगा कि जैसे लोगों की अपेक्षाएं बहुत बढ़ गई हों. फिर 26 मार्च 1953 को साल्क ने रेडियो पर देश को संबोधित किया. ज़्यादातर लोगों ने साल्क और उनकी वैक्सीन के बारे में पहले कभी नहीं सुना था. पर वे पोलियो के बारे में जानते थे, इसलिए लोगों ने साल्क को सुना. पोलियो क्यों होता है, वायरस क्या होता है, और कैसे प्रायोगिक वैक्सीन काम करती है, उसके बारे में साल्क ने उन्हें समझाया. उन्होंने यह भी बताया कि बड़े पैमाने पर काम करने वाली वैक्सीन के उपलब्ध होने में अभी कुछ और समय लगेगा.

1953 के अंत में *नेशनल फाउंडेशन* के बेसिल ओकूनर ने घोषणा की कि अगले वर्ष वैक्सीन पर फील्ड ट्रायल किया जाएगा. इसके लिए ऐसे बच्चों पर परीक्षण किया जाएगा जिन्हें पहले कभी पोलियो नहीं हुआ था. वो तब तक किसी भी वैक्सीन का सबसे बड़ा फील्ड ट्रायल था. इस ट्रायल का आयोजन साल्क के टीचर *यूनिवर्सिटी ऑफ़ मिशिगिन* के डॉ. थॉमस फ्रांसिस ने किया. फील्ड ट्रायल में डबल-ब्लाइंड टेस्ट भी शामिल किया गया. इसमें आधे लोगों को असली और आधे लोगों को नकली वैक्सीन दी गई. सिर्फ डॉ. फ्रांसिस को पता था कि किसे असली और किसे नकली वैक्सीन दी गई थी. जब तक डॉ. फ्रांसिस का अध्धयन समाप्त नहीं हुआ तब तक साल्क को भी उसके परिणाम नहीं पता चले.

1954 की वसंत में फील्ड ट्रायल शुरू हुए. उनके नतीजे एक साल बाद ही पता चले. अपने पालकों की अनुमति के बाद हजारों दूसरी कक्षा के बच्चे वैक्सीन लेने के लिए जमा हुए. दूसरी कक्षा के बच्चों को इस बीमारी से सबसे ज्यादा खतरा था. साल्क ने खुद कुछ बच्चों को वैक्सीन दी. जिन बच्चों को सबसे पहले वैक्सीन दी गई उन्हें "पोलियो पायनियर" के नाम से जाना गया.

डॉ. साल्क एक आठ वर्ष की लड़की गेल रोसेन्थाल को पोलियो वैक्सीन देते हुए.

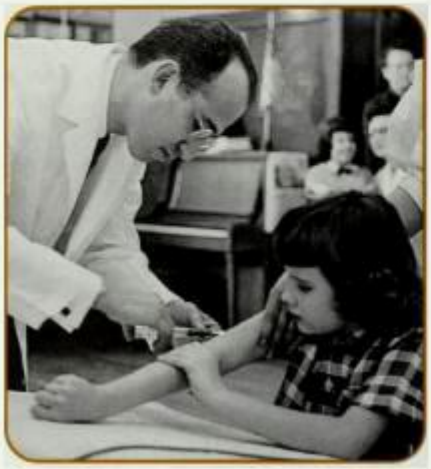

पोलियो वैक्सीन के बारे में नहीं जानने के बावजूद इतने सारे लोगों ने इंजेक्शन क्यों लिया? क्योंकि पोलियो के आतंक और खतरे से सभी अवगत थे. इसीलिए तमाम अमरीकी नागरिकों ने साल्क जैसे वैज्ञानिक की बात पर विश्वास किया. सभी लोग चाहते थे कि उनके बच्चों को पोलियो की बीमारी नहीं हो.

तेंतीस राज्यों ने पोलियो वैक्सीन के ट्रायल में भाग लिया. यह अभियान बहुत बड़ा था और महंगा भी. इस अभियान में 7.5 लाँख अमरीकी डॉलर खर्च हुए. करीब दस लाख बच्चों का अध्धयन किया गया. पहला बच्चा जिसे वैक्सीन दी गई उसका नाम था रैंडी कर्र और वो वर्जिनिया का था. ट्रायल की पच्चीसवीं वर्षगाँठ पर 1980 में डॉ. साल्क और रैंडी कर्र पहली बार मिले.

फिर एक पूरे साल लोग ट्रायल के नतीजों का इंतज़ार करते रहे. अंत में वो सुनहरा दिन आया! वो दिन था 12 अप्रैल 1955 - प्रेसिडेंट फ्रेंक्लिन रूसवेल्ट की मृत्यु की दसवीं पुण्यतिथि. उस दिन डॉ. थॉमस फ्रांसिस, *डायरेक्टर ऑफ़ पोलियो वैक्सीन इवैल्यूएशन सेण्टर*, यूनिवर्सिटी ऑफ़ मिशिगिन ने चार शब्दों में अपनी घोषणा की, **"सुरक्षित, प्रभावी और ताकतवर."** इन शब्दों के सच होने के लिए वैज्ञानिकों ने सैकड़ों साल मेहनत की थी. अब पोलियो की बीमारी पर विजय प्राप्त की जा सकती थी और उसे उखाड़ फेंका जा सकता था.

रिपोर्ट के अनुसार पोलियो वैक्सीन 80 से 90 प्रतिशत प्रभावशाली थी, दो में से तीन पोलियो-वायरस के खिलाफ. वो तीसरे पोलियो-वायरस के खिलाफ सिर्फ 60 से 70 प्रतिशत ही प्रभावशाली थी. साल्क ने कहा कि उनकी नई वैक्सीन 100 प्रतिशत प्रभावशाली होगी. यह सुनकर वैज्ञानिक समुदाय को एक झटका लगा.

एक महत्वपूर्ण ऐतिहासिक क्षण में पोलियो पायनियर रैंडी कर्र को फ़ील्ड ट्रायल के दौरान पहली वैक्सीन दी गई.

डॉ. जोनास साल्क (बाएं) पहली बार पोलियो पायनियर रैंडी कर्र से 11 अप्रैल 1980 को मिले.

जोनास साल्क कोई डींग नहीं मार रहे थे. 1952 में 57,000 अमरीकी पोलियो से ग्रस्त थे. 1953 और 1954 की गर्मियों में, पोलियो-वायरस वैक्सीन के उपयोग से पहले, दोनों साल 38,000 लोगों को पोलियो हुआ. 1957 में, पोलियो-वायरस वैक्सीन के उपयोग के सिर्फ तीन साल बाद यह संख्या घटकर मात्र 6,000 रह गई. उसके बाद सिर्फ एक पीढ़ी में अमरीका में पोलियो की बीमारी को उखाड़ फेंका गया. आज पोलियो लगभग गायब है. विश्व स्वस्थ्य संगठन के अनुसार जल्द ही पोलियो से पूरी दुनिया को मुक्त किया जाएगा.

उसके बाद डॉ. जोनस साल्क एक अमरीकी हीरो बन गए. कई लोगों को लगा कि वे मेडिसिन में नोबल पुरुस्कार जीतेंगे. पर ऐसा नहीं हुआ. प्रेसिडेंट आइजनहावर ने साल्क परिवार को वाइट हाउस में आमंत्रित किया और उन्हें *कांग्रेशनल मेडल ऑफ़ हॉनर* प्रदान किया. उन्हें कई यूनिवर्सिटीज ने डॉक्टरेट की डिग्री प्रदान की और उन्हें हज़ारों अमरीकी बच्चों ने पत्र लिखे. स्कूलों ने अपना नाम जोनस साल्क पर रखा. पचास के दशक में तमाम लड़कों का नाम जोनस रखा गया.

साल्क ने अपनी वैक्सीन के लिए कभी कुछ पैसे नहीं लिए. जब किसी ने पूछा कि उस वैक्सीन का कौन मालिक था तो उन्होंने लिखा, “लोग ही इसके मालिक हैं. इस वैक्सीन का कोई पेटेंट नहीं है. क्या आप सूरज को पेटेंट कर सकते हैं?” साल्क का मतलब था कि जैसे सूरज सबका है वैसे ही वो वैक्सीन भी सबके भले के लिए थी.

पोलियो वैक्सीन की सफलता की घोषणा सभी अख़बारों में हैडलाइन बनी.

पर कुछ वैज्ञानिकों को साल्क की टिप्पणी पसंद नहीं आई. उन्हें लगा कि साल्क अपनी शेखी मार रहे थे और सारा श्रेय ख़ुद ले रहे थे, जबकि उनसे पहले भी लोगों ने पोलियो वैक्सीन पर बहुत काम किया था.

जब साल्क को लगता था कि वे सही हैं तब वो अन्य लोगों की टीका-टिप्पणी की ख़ास परवाह नहीं करते थे. वो अपना काम करते रहे और अपनी ज़िन्दगी जीते रहे. उन्होंने एक कठिन समस्या को अपने तरीके से सुलझाया था. साल्क, महत्त्वाकांक्षी थे और अपने कार्य पर पूरी तरह केन्द्रित थे. उनके यह गुण अन्य वैज्ञानिकों को शायद पसंद नहीं थे. पर शायद इन्हीं गुणों के कारण साल्क अपने मुहिम में सफल हुए.

कई माताएं अपने बच्चों के साथ क्लिनिक के सामने खड़ी हैं और पोलियो-वैक्सीन का इंतज़ार कर रही हैं.

साल्क ने अपनी लेबोरेटरी में शोध ज़ारी रखा जिससे पोलियो-वैक्सीन अधिक-से-अधिक प्रभावशाली बने.

लोगों की टीका-टिप्पणी से साल्क पर ज्यादा असर नहीं पड़ा, पर प्रसिद्धि से वो बहुत परेशान हुए. वो चाहते थे कि वो अकेले एक वैज्ञानिक जैसे अपना शोध ज़ारी रख सकें. इसलिए उन्होंने *यूनिवर्सिटी ऑफ़ पिट्टसबर्ग* छोड़ने की ठानी. अपने ज़माने का सबसे मशहूर व्यक्ति बहुत कुछ कर सकता था. 1963 में साल्क को, *नेशनल फाउंडेशन* ने अनुदान दिया और सन-डिएगो, कैलिफ़ोर्निया ने ज़मीन का टुकड़ा भेंट किया. वहां उन्होंने *साल्क इंस्टिट्यूट ऑफ़ बायोलॉजिकल स्टडीज* शुरू की. अब फिर से साल्क, कोई नई चुनौती की खोज में थे.

जब तक साल्क ने अपनी नई इंस्टिट्यूट खोली तब तक जिस वैक्सीन ने उन्हें प्रसिद्धि दिलाई थी उसका उपयोग बहुत कम हो चुका था. साल्क की तरह ही, साबिन भी वैक्सीन पर शोध कर रहे थे. पर अब साल्क के पुराने प्रतिद्वंदी साबिन सफल होते नज़र आए. साबिन की जिंदा वायरस की वैक्सीन सफल हुई और साल्क की वैक्सीन की तुलना में, उसके दो ज्यादा फायदे थे. साबिन की वैक्सीन ज्यादा सुरक्षा देती थी और उसके लिए इंजेक्शन नहीं देना पड़ता था. साबिन की वैक्सीन की बूंदे सीधे मुंह में डाली जा सकती थीं. अब सुई और इंजेक्शन की ज़रुरत नहीं थी. धीरे-धीरे साल्क की महान खोज के स्थान पर आसान वैक्सीन-ड्राप दी जाने लगीं, जिन्हें डॉ. साबिन ने खोजा था.

इससे साबिन बहुत खुश थे. साल्क नाराज़ थे. उन्होंने साबिन की वैक्सीन के बारे में कुछ टिप्पणी नहीं की सिर्फ इतना कहा जिंदा वायरस से बनी वैक्सीन के संभावित दुष्प्रभाव हो सकते थे. यह दोनों महान वैज्ञानिक थे, पर वे दोनों प्रतिद्वंदी भी थे.

1993 में साबिन का देहांत हुआ. वो साल्क की सफलता से अंत तक परेशान रहे. उन्होंने साल्क की वैक्सीन के बारे में कहा, “वो बिल्कुल किचन केमिस्ट्री थी. साल्क ने कुछ भी नया नहीं खोजा.”

पर अब साल्क का पूरा ध्यान अपनी नई इंस्टिट्यूट पर केन्द्रित था. वो अब पहले से भी अधिक व्यस्त थे. एक दिन में सीमित घंटे होते हैं और हफ्ते में सीमित दिन होते हैं. साल्क की व्यस्तता के कारण उनकी शादी टूट गई. 29 साल शादी के बाद साल्क दंपत्ति ने एक-दूसरे को तलाक दिया. दो साल बाद साल्क ने फ़्रन्कोइसे गिलोट से शादी की. वो एक फ्रेंच आर्टिस्ट थीं.

उनके बेटे पीटर साल्क ने अपने मशहूर पिता के साथ बड़े होने के अपने संस्मरणों में लिखा – “वो बहुत कम ही घर पर होते थे. इसलिए वो अन्य पिताओं जैसे हमारे साथ बिल्कुल नहीं खेलते थे. पर गर्मियों में जब उन्हें ज़्यादा समय मिलता था तब हम सब मिलकर स्विमिंग, सेलिंग और स्कीइंग करते थे. तब भी पिताजी अपना अधिकतर समय लेबोरेटरी में ही बिताते थे. 1950 में हमने एरी झील के पास सात साल के लिए एक घर किराये पर लिया था. वहां हम गर्मियां बिताया करते थे. वहां सिर्फ 15-20 घर ही थे, और सिर्फ एक ही घर में टेलीफोन था. वो टेलीफोन एक खंभे से लटका था. जब कभी फोन बजता तो जो भी आसपास होता वो उत्तर देता था. पर क्योंकि अधिकतर फोन पिताजी के लिए ही आते थे इसलिए अंत में पिताजी ने घर में निजी फोन लगवाया. उस पूरे इलाके में वो पहला निजी फोन था.”

वैसे साल्क ने अपने लड़कों से डॉक्टर बनने का कभी आग्रह नहीं किया. पर उनके तीनों लड़के मेडिकल स्कूल में गए. पीटर साल्क के अनुसार, “पिताजी इतने शक्तिशाली थे, कि उनके बिना कहे ही हम उनके पदचिन्हों पर चल दिए.”

साल्क इंस्टिट्यूट की स्थापना 1984 में हुई. वहां पर उन्होंने अपने लेबोरेटरी भी शुरू की. जब वो 70 वर्ष के हुए तब उन्होंने रिटायर होने की सोची, क्योंकि वो अब कुछ लिखना चाहते थे. पर उन्होंने लेबोरेटरी छोड़ी नहीं. उसकी बजाए उन्होंने AIDS पर शोध शुरू किया.

जोनस साल्क अपनी दूसरी पत्नी फ़्रन्कोइसे गिलोट के साथ.

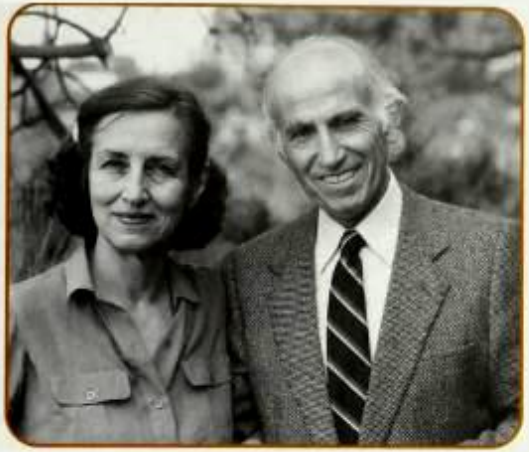

AIDS एक बेहद घातक बीमारी थी जो इंसान के इम्यून सिस्टम को नष्ट कर देती थी. उसके लिए कोई इलाज या वैक्सीन नहीं थी. साल्क को लगा कि AIDS पर शोध सही दिशा में नहीं जा रहा था. उस शोध को ठीक करने का बीड़ा साल्क ने खुद उठाया. साल्क की इस हेकड़ी पर उनके साथी उनसे नाराज़ हुए. पर आपको याद होगा, साल्क ने कहा था, “ज़िन्दगी, लोकप्रियता की स्पर्धा नहीं है.”

23 जून 1995 को दिल के दौरे से साल्क का देहांत हुआ. वो तब 80 वर्ष के थे. साल्क अपने तरीके से AIDS पर शोध करते रहे. 1980 के अंत तक उन्होंने AIDS के लिए एक वैक्सीन भी बनाई. अपनी मृत्यु के समय वो उसके परीक्षण की योजना बना रहे थे. पीटर साल्क ने अपने प्रसिद्ध पिता के बारे में ठीक ही कहा, "अपनी मृत्यु तक उन्होंने अपना शोधकार्य नहीं छोड़ा."

1999 में साल्क और साबिन का काम फिर अख़बारों की हैडलाइन बना. 1979 में अमरीका में पोलियो आखरी बार रिपोर्ट किया गया. उस साल दस लोग पोलियो ग्रस्त हुए. 1997 में पोलियो के सिर्फ 5 केस सामने आए. 1990 के दशक में हर साल सिर्फ 8 पोलियो के केस रिपोर्ट हुए.

सेंटर फॉर डिजीज कण्ट्रोल ने एक बार फिर से वैक्सीन को बदलने का निर्णय लिया. जनवरी 2000 से साबिन की वैक्सीन अमरीका में न के बराबर इस्तेमाल होने लगी. वहां अब फिर से साल्क की वैक्सीन उपयोग की जाती है, और उसे इंजेक्शन द्वारा दिया जाता है.

साबिन की वैक्सीन अभी भी उन देशों में इस्तेमाल होती है, जहाँ पर स्वास्थ्य सेवाएं कमज़ोर हैं. इन देशों में पोलियो की महामारी को तुरंत रोकना पड़ता है. साबिन की जिंदा वायरस वाली पोलियो वैक्सीन की बूंदों को मुंह में डालना ज्यादा आसान होता है. बूंदे जल्दी मुंह में डाली जा सकती हैं और उनसे महामारी रोकी जा सकती है.

साबिन की पोलियो वैक्सीन भारत में बच्चों को दी जाती है. 1999 में इस वैक्सीन को देना शुरू किया गया और उससे पोलियो पर नियंत्रण पाया गया.

अमरीका में पोलियो का खतरा पूरी तरह टल गया है, और दुनिया के ज़्यादातर देशों में भी पोलियो का सफाया हो चुका है. पर जिन लोगों को वैक्सीन से विकसित होने से पहले पोलियो हो चुका था उनकी अभी भी समस्याएँ हैं. 1980 में डॉक्टर्स ने पाया कि जिन लोगों को तीस-चालीस साल पहले पोलियो हुआ था, उन्हें दुबारा समस्याएं हो रही थीं. तब उन्हें लकवा नहीं हुआ था, पर अब वे अपने हाथ-पैरों में कमजोरी महसूस कर रहे थे. उन्हें कुछ और मेडिकल समस्याएं भी थीं.

इसे PPS या *पोस्ट पोलियो सिंड्रोम* कहते हैं. उसके बारे में बहुत कम ही पता है. वैज्ञानिकों के अनुसार जिस वायरस से लोग बरसों पहले ग्रसित हुए थे वो अब प्रस्फुटित हो रहा था और उसका कोई इलाज भी नहीं था.

अगर जोनस साल्क कुछ और सालों के लिए जीवित रहते तो शायद उन्होंने PPS का भी कोई हल निकाला होता. अगर उस पर नहीं तो वो किसी और गंभीर बीमारी का इलाज खोज रहे होते. साल्क बहुत शांत, होशियार और अकेले व्यक्ति थे. अपने काम के प्रति वो पूरी तरह से समर्पित थे. साल्क ने एक बार कहा था, "मेरा काम ज़िन्दगी की अतर्कसंगतता पर एक प्रहार है."

बीसवीं शताब्दी के मध्य में जन्में हजारों अमरीकी जो पोलियो के भय के साए में जी रहे थे, उन्हें साल्क ने शक्ति प्रदान की. 1993 में साल्क ने कहा, "भय से मुक्ति पाना एक बहुत बड़ा आशीर्वाद है." फ्रेंक्लिन रूज़वेल्ट जिन्हें खुद पोलियो था उन्होंने कहा, "मुझे पता है कि लोगों को भय से मुक्त करने के क्या परिणाम हो सकते हैं."

वैसे साल्क एक दिग्गज वैज्ञानिक थे, पर उन्हें कभी न तो नोबल पुरुस्कार मिला और न ही उन्हें नेशनल अकादमी ऑफ़ साइंसेज का सदस्य बनाया गया. अक्सर उन्हें मेडिकल दुनिया से लताड़ा गया और भगाया गया. पर जिन लोगों का उन्होंने उपचार किया उन्होंने साल्क को बहुत प्यार भी दिया. वो जो चाहते थे, वही बने रहे और उनकी निगाहें हमेशा अगले वैज्ञानिक रहस्य के हल की ओर लगी रहती थीं. "मैंने अपनी ज़िन्दगी में बहुत कुछ सीखा है," उन्होंने कहा, "अब मुझे पता है कि मुझे अपने ही रास्ते पर चलना चाहिए." और उन्होंने वो किया भी.

डॉ. जोनस साल्क का खुद की क्षमतायों में विश्वास था. 1995 में अपनी मृत्यु तक वो अपना शोधकार्य करते रहे.

अंत में साल्क ने खुद की सलाह को माना. "समस्या के ऊपर उठो और उसका हल मिलने तक उसे मत छोड़ो."

जोनस साल्क में बहुत आत्म-विश्वास था, उन्हें खुद की क्षमताओं पर विश्वास था. उनकी तारीफ़ और शोहरत में कोई रूचि नहीं थी. 1995 में साल्क की मृत्यु के कुछ दिन बाद सन डिएगो अखबार में एक कार्टून छपा. उसमें एक छोटा लड़का साल्क के कब्र के पास खड़ा था. लड़का एक टी-शर्ट पहने था जिसपर लिखा था "भविष्य की पीढ़ी". उसके पास ज़मीन पर कुछ बैसाखियाँ पड़ीं थीं जिनकी अब कोई ज़रुरत नहीं थी. वो लड़का सारी दुनिया का प्रतिनिधि था. वो कह रहा था – "साल्क सर, आपका बहुत-बहुत धन्यवाद!"